मूल्य : 25 रुपये

वार्षिकांक

वर्ष:1, अंक : 4, अक्टूबर-दिसंबर, 2009

पारस-पखान

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

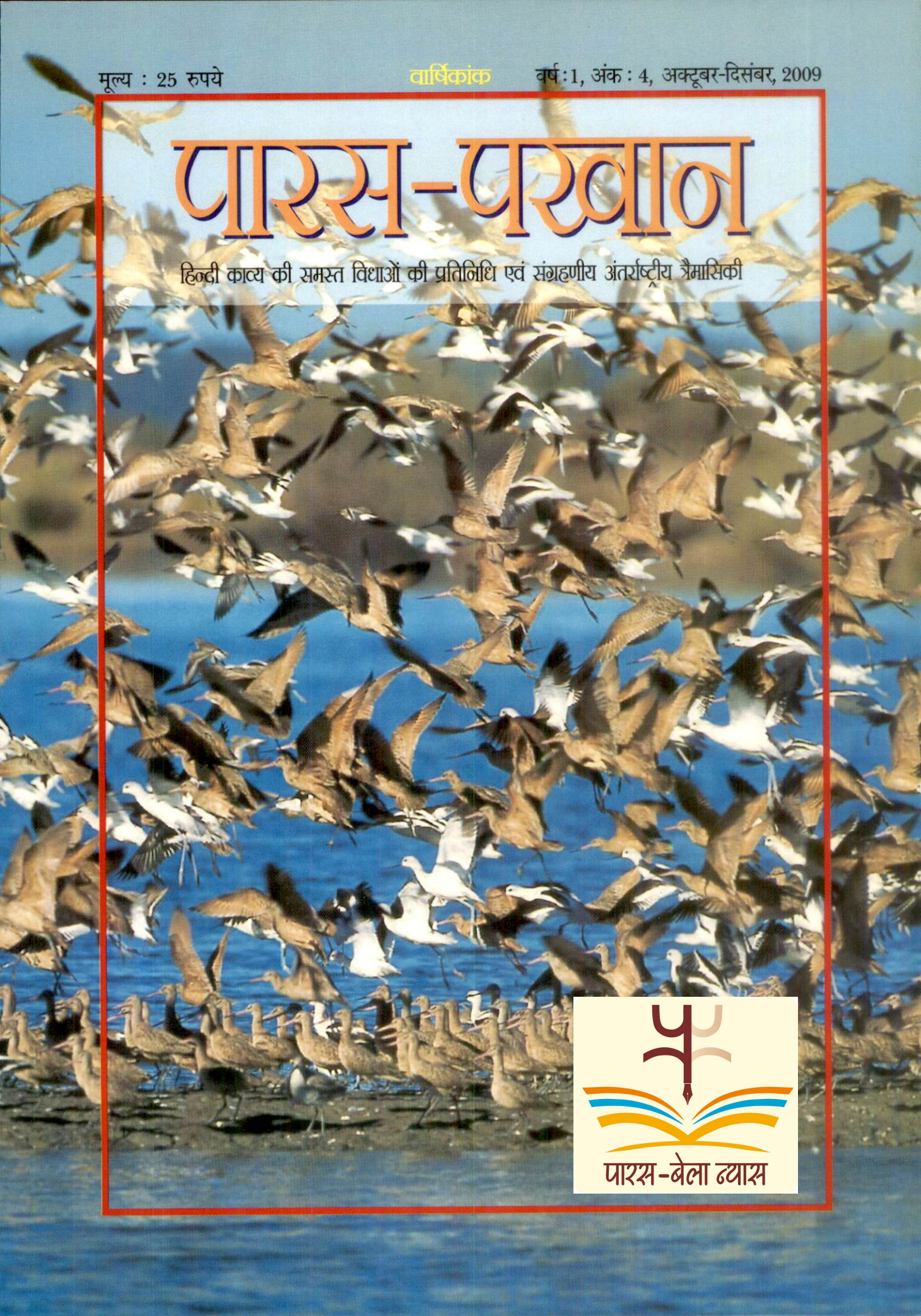

पारस-बेला व्यास

माँ फाउण्डेशन द्वारा प्रकाशित

हास्य-व्यंग्य की अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका

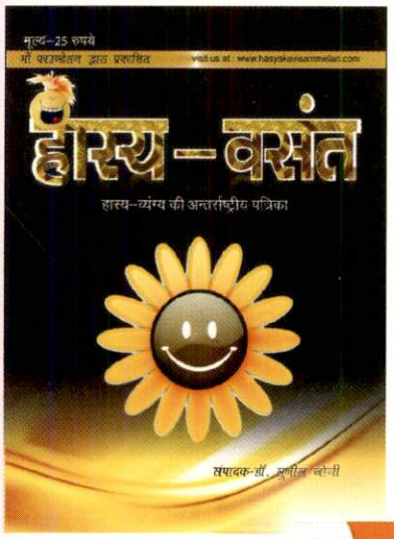

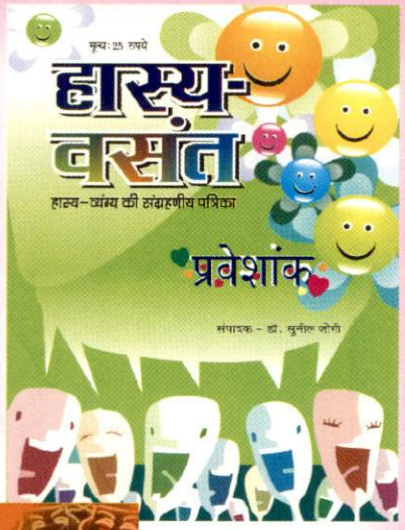

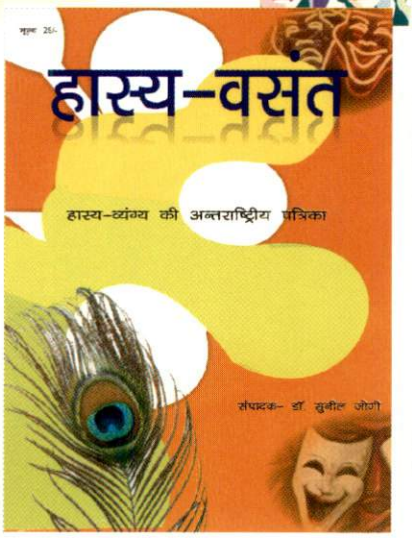

संपादक : डॉ. सुनील जोगी

ए-28, नंद निकेतन, पंचशील विहार, नई दिल्ली-110017

दूरभाष : 09811005255

www.hasyakavisammelan.com

E-mail: hasyavasant@gmail.com

अंक–4 (वार्षिकांक), अक्टूबर–दिसंबर, 2009

मूल्य : 25 रुपये

पारस–पखान

(हिंदी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी)

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

मुझको कोई बतलाये... डॉ. अनिल कुमार पाठक 3

कालजयी

अभिलाषा पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून' 4

अंधा युग डॉ धर्मवीर भारती 5

उनको प्रणाम नागार्जुन 7

जन्मभूमि (दोहे) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' 9

यह दिया बुझे नहीं गोपाल सिंह 'नेपाली' 10

श्रद्धांजलि

दो नवगीत :

खून के..., प्रार्थना गीत नईम 12

गंगाजल वाले कलश आनन्द शर्मा 14

समय के सारथी

देश-वंदना डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम 15

छिप-छिप अश्रु बहाने... गोपालदास 'नीरज' 17

बालू बीच खड़े डॉ. कन्हैयालाल 'नंदन' 19

क्यों नदियाँ चुप हैं? राधेश्याम बंधु 21

अभी कुछ..., झूठ अब... नंद चतुर्वेदी 22

ढूंढ़ते रह जाओगे अरुण जैमिनी 24

निगाहों में धनंजय कुमार 26

दुआ दे कोई अनुभव शर्मा 27

नारी-स्वर

डूबता सूरज, नंगे पाव निवेदिता जोशी 28

अध्यात्म-जगत

ओम जय जगदीश हरे पं. श्रद्धाराम शर्मा 29

प्रवासी के बोल

हो बहुत मुबारक दीपिका जोशी 'संध्या' 30

दरमियाँ यों न... चाँद हदियाबादी 31

मैं आया हूँ डॉ. अजय त्रिपाठी 32

पासवर्ड गुलशन सुखलाल 33

आमने-सामने

बाहर का हिंदी साहित्य... डॉ. सुषम बेदी 34

शायरों की महफिल 38

पुस्तक-समीक्षा

बेबाक जैमिनी अमृतेश्वरचरण 39

संपादक
डॉ. सुनील जोगी

सह-संपादक
अमृतेश्वरचरण सरस्वती

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
श्री अभिमन्यु कुमार पाठक;
श्री अरुण कुमार पाठक;
श्री राजेश प्रकाश;
डॉ. अनिल कुमार।

लेआउट एवं टाइपसेटिंग :
इंडिका इन्फोमीडिया, जनकपुरी, नई दिल्ली - 58

मूल्य : 25 रुपए
वार्षिक : 100 रुपए
पंचवार्षिक : 450 रुपए
आजीवन : 5,000 रुपए
विदेशों में : $ 5
(एक अंक)

प्रवासी संपादकीय सलाहकार
डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे)

संपादकीय कार्यालय
आर-101 ए, गीता अपार्टमेन्ट
खिड़की एक्सटेन्शन,
मालवीय नगर
नयी दिल्ली-110017
दूरभाष - 98110-05255

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक **डॉ. अनिल कुमार** द्वारा अभिषेक प्रिंटर्स, सी, 136, फेज 1, नारायणा, इंडस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली में मुद्रित एवं सी-49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित। संपादक - **डॉ. सुनील जोगी**।

'पारस-पखान' में प्रकाशित रचनाओं के रचयिताओं के विचार अपने हैं। विवादास्पद मामले लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

संपादकीय

वर्ष 2009 का आखिरी अंक 'वार्षिकांक' के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि आपने अपनी गहन समीक्षा दृष्टि से पत्रिका का समाकलन कर उसे हृदय से सराहा और इस संदर्भ में अपने ढेरों प्रशंसा-पत्र भेजे। इस हेतु हम आपके आभारी हैं। भविष्य में आपके सुझावों के अनुसार पत्रिका को परिवर्द्धित करने का प्रयास करेंगे।

वास्तव में बड़े-बड़े कॉरपोरेट घरानों से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं की तुलना में सीमित संसाधनों से प्रकाशित होने वाली लघु पत्रिकाओं की जिजीविषा और उनके अदम्य साहस की प्रशंसा करनी चाहिए कि वे विज्ञापनों के अभाव में भी हिंदी साहित्य को जिंदा रखे हुई हैं। उनका एक निश्चित पाठक वर्ग है, जो इनको प्रोत्साहित और प्रशंसित करता रहता है। उसी श्रेणी की हमारी पत्रिका है, जिसके माध्यम से हम दम तोड़ती हिंदी कविता को संजीवनी पिलाकर पुनरुज्जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। हमारे इस अभियान में आपका सक्रिय सहयोग अपेक्षित है।

सन् 2009 में हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में सहस्राधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इससे हिंदी की समृद्धि स्तर का पता चलता है। कविता-क्षेत्र में विशेष रूप से हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठित कवि त्रिलोचन शास्त्री का 'बात मेरी कविता' नामक शीर्षक से एक विशिष्ट चयन आया है। दिनेश कुमार शुक्ल एक संवेदनशील कवि हैं, यह बात उन्होंने 'आखर अरथ' नामक अपने कविता-संग्रह में सिद्ध की है। त्रिलोचन की तरह शुक्ल का संग्रह भी पठनीय और संग्रहणीय है। इन संग्रहों के अतिरिक्त सुंदरचन्द्र ठाकुर का 'एक दुनिया है असंख्य' और पंकज राग का 'भूमडंल की एक रात' संग्रह भी उल्लेखनीय हैं। राग ने भूमंडल के विविध दृश्यों के माध्यम से भूमंडलीकरण के खतरों के प्रति आगाह किया है। वहीं ठाकुर की रचनाएं एक दुनिया के माध्यम से उसके हज़ारों इन्द्रधनुषों को उभारती हैं। इनके अतिरिक्त छोटे कस्बों और नगरों से भी दसियों कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। हिंदी काव्य-मंच के रचनाकारों ने अपनी कविताओं के माध्यम से हिंदी प्रचार-प्रसार की समूचे देश और विदेशों में अलख जगाए रखी। ये इस बात का संकेत है कि सात समंदर की सीमाओं को तोड़ते हुए हिंदी कविता प्रगति-पथ पर उत्तरोत्तर अग्रसर है।

वर्ष 2009 के पंछी ने अस्ताचलगामी सूर्य को देखकर धीरे-धीरे अपने पंख समेट लिए हैं और वर्ष 2010 की प्रभात बेला में एक नये संकल्प और ऊर्जा के साथ उड़ान भरने के लिए तैयार हो गया है। नववर्ष 2010 पर अपने सभी रचनाकारों, पाठकों तथा शुभेच्छुओं को कोटिशः शुभकामनाएं। आप समूचे वर्ष स्वस्थ-सानंद रहकर अपने शुभ संकल्पों को सिद्धि देकर निरंतर प्रगति करते रहें, ऐसी हमारी सदिच्छा है।

हमें विश्वास है कि आप भविष्य में भी अपनी स्वस्थ प्रतिक्रियाओं से हमें अवगत कराते रहेंगे।

–डॉ. सुनील जोगी
(संपादक)
मोबा. : 09811005255

मुझको कोई बतलाये तो...

–डॉ. अनिल कुमार पाठक

मुझको कोई बतलाये तो...
मैं ढूँढ़ निकालूँगा उनको,
निश्चित मना लूँगा उनको।
रिश्तों की लाख दुहाई दे,
पर मुझको कोई बतलाये तो।
बाबू जी मेरे कहाँ गये,
मुझको कोई बतलाये तो ॥1॥

उन्हें सुना निज करुण-कथा,
तड़पन अपनी औ' मर्म-व्यथा।
मेरे दुखियारे मन का
पर, संदेश कोई पहुँचाये तो।
बाबू जी मेरे कहाँ गये,
मुझको कोई बतलाये तो ॥2॥

सिर झुका, नयन में अश्रु लिये,
निःशब्द सभी क्यों मौन हुये।
मेरे इन सीधे प्रश्नों का,
उत्तर कोई बतलाये तो।
बाबू जी मेरे कहाँ गये,
मुझको कोई बतलाये तो ॥3॥

मैं भी क्या अब चुप हो जाऊँ?
पर धैर्य कहाँ से वह लाऊँ?
जो आहत मन की तड़पन
औ' उलझन को सुलझाये तो।
बाबू जी मेरे कहाँ गये,
मुझको कोई बतलाये तो ॥4॥

अभिलाषा

–पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

शोभित तारक की द्युति में ज्यों चन्द्र सुधा बरसाया करे।
मानसरोवर की लहरों पर हंस यथा मुस्काया करे।।
मलयानिल ज्यों मधुदान किये नवकीर्ति सदा बिखराया करे।
जीवन-ज्योति तुम्हारा प्रिये! सब भाँति हमें हरषाया करे।।

जीवन शोभित हो जिससे तुम कीर्ति वहीं बिखराते रहो।
मधुमास को आस लगी जिससे उस सौरभ-सा मदमाते रहो।।
जगती ही रहे जगती जिससे, वह जीवन-ज्योति जगाते रहो।
उदयाचल में नित सूर्य बने कलियों को सदा ही खिलाते रहो।।

तुम तुङ्ग हिमालय से फहरो, लहरों-लहरों पर वारिद बन।
मन के नभ आँगन में प्रिय हे, विहरो खग-सा तुम जीवन घन।।
बरसों सदा ही इस जीवन में तुम प्यासे पपीहों के जीवन बन।
यह सूखी धरा सी रहे न कहीं अरु मेरा कहीं यह भावुक मन।।

विश्व की कोमलता में पले तुम कोमल राग सुनाते रहो।
भक्त की भावुकता में रमे तुम स्नेह सदा ही दिखाते रहो।।
अपना ही तुम्हें हैं बना जो चुके उनको भी सदा अपनाते रहो।
प्रेम-पयोधि के नाविक को मझधार से पार लगाते रहो।।

साईं इस संसार में, ऐसे मिले फकीर।
भीतर से 'लादेन' हैं, बाहर दिखें 'कबीर'।।
–डॉ. सुरेश अवस्थी

प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' के यशस्वी संपादक पद्मश्री **डॉ. धर्मवीर भारती** का जन्म 25 दिसम्बर, 1926 को प्रयाग में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय इलाहाबाद से डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में पी-एच.डी. (हिंदी) करने वाले भारतीजी के 'ठंढ़ा लोहा', 'अंधा युग', 'सात गीत वर्ष', 'कनुप्रिया', 'सपना', 'अभी भी' और 'आद्यन्त' जैसे चर्चित कविता-संग्रह प्रकाशित हैं। हम यहाँ 'अंधा युग' के कुछ अंश प्रस्तुत कर रहे हैं।

अंधा युग

–डॉ धर्मवीर भारती

उस भविष्य में
धर्म-अर्थ ह्रासोन्मुख होंगे।
क्षय होगा धीरे-धीरे सारी धरती का।
सत्ता होगी उनकी
जिनकी पूँजी होगी।
जिनके नकली चेहरे होंगे
केवल उन्हें महत्त्व मिलेगा
राजशक्तियाँ लोलुप होंगी
जनता उनसे पीड़ित होकर
गहन गुफाओं में छिप-छिपकर दिन काटेगी।

******

युद्धोपरांत यह अंधा युग अवतरित हुआ
जिनमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त
पर शेष अधिकतर हैं अंधे
पथभ्रष्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अंतर की अंध गुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अंधों की है
या कथा ज्योति की है, अंधों के माध्यम से!

******

टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है

पांडव ने कुछ कम, कौरव ने कुछ ज़्यादा
यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है?
यह अज़ब युद्ध है, नहीं किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना-ही-खोना है
अंधों से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अंधापन
भय का अंधापन, ममता का अंधापन
अधिकारों का अंधापन जीत गया
जो कुछ सुंदर था, शुभ था, कोमलतम था
वह हार गया, द्वापर युग बीत गया
(पर्दा उठने लगता है)
यह महायुद्ध के अंतिम दिन की संध्या
है छाई चारों ओर उदासी गहरी
कौरव के महलों का सूना गलियारा
हैं घूम रहे केवल दो बूढ़े प्रहरी।

कथा-गायन

आसन्न पराजय वाली इस नगरी में
सब नष्ट हुई पद्धतियाँ धीमे-धीमे
यह शाम, पराजय की, भय की, संशय की
भर गए तिमिर से ये सूने गलियारे
जिनमें बूढ़ा-झूठा भविष्य याचक-सा
है भटक रहा टुकड़े को हाथ पसारे
अंदर केवल दो बुझती लपटें बाकी
राजा के अंधे दर्शन की बारी की
या अंधी आशा माता गांधारी की
वह संजय, जिसको वह वरदान मिला है
वह अमर रहेगा और तटस्थ रहेगा,
जो दिव्य दृष्टि से सब देखेगा, समझेगा
जो अंधे राजा से सब सत्य कहेगा
जो मुक्त रहेगा, ब्रह्मास्त्रों के भय से
जो मुक्त रहेगा उलझन से, संशय से
वह संजय भी इस मोह-निशा से घिरकर
है भटक रहा जाने किस कंटक-पथ पर।

सुविख्यात प्रगतिशील कवि एवं कथाकार **बाबा नागार्जुन** का जन्म सन् 1911 की ज्येष्ठ पूर्णिमा को ग्राम तरौनी, ज़िला दरभंगा (बिहार) में हुआ था। हिंदी, मैथिली, संस्कृत और बांग्ला में काव्य-रचना करने वाले नागार्जुन की लगभग दो दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। वे मैथिली काव्य-संग्रह 'पत्रहीन नग्न गाछ' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित हुए। 5 नवम्बर, 1998 को गो-लोकवास।

उनको प्रणाम!

–नागार्जुन

जो नहीं हो सके पूर्ण काम
मैं उनको करता हूँ प्रणाम।
कुछ कठिन और कुछ लक्ष्य-भ्रष्ट
जिनके अभिमंत्रित तीर हुए
रण की समाप्ति से पहले ही
जो वीर रिक्त-तूणीर हुए
उनको प्रणाम!

जो छोटी-सी नैया लेकर
उतरे करने को उदधि-पार
मन-की-मन में रही, स्वयं
हो गए उसी में निराकार
उनको प्रणाम!

जो उच्च शिखर की ओर बढ़े
रह-रह नव-नव उत्साह भरे
पर कुछ ने ले ली हिम-समाधि
कुछ असफल ही नीचे उतरे
उनको प्रणाम!

एकाकी और अकिंचन हो
जो भू-परिक्रमा को निकले
हो गए पंगु प्रति-पद जिनके
इतने अदृष्ट के दाँव चले
उनको प्रणाम!

कालजयी

थी उम्र साधना, पर जिनका
जीवन-नाटक दुःखांत हुआ
था जन्म-काल में सिंह लग्न
पर कुसमय ही देहांत हुआ
उनको प्रणाम!

दृढ़ व्रत औ' दुर्दम साहस के
जो उदाहरण थे मूर्ति-मंत
पर निरवधि बंदी जीवन ने
जिनकी धुन का कर दिया अंत
उन्हें प्रणाम!

जिनकी सेवाएँ अतुलनीय
पर विज्ञापन से रहे दूर
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके
कर दिये मनोरथ चूर-चूर
उनको प्रणाम!

मुँह खोले, मिसरी झरे, भीतर धरे बिलेड।
मौका पाते गपक लें, एबीसीडी...जेड।।

–डॉ. सुरेश अवस्थी

खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्यकार **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'** का जन्म 15 अप्रैल को आजमगढ़ (उ.प्र.) के निज़ामाबाद कस्बे में हुआ था। वे हिंदी कविता के नींव के पत्थर हैं। 'प्रिय प्रवास' (महाकाव्य), 'चोखे-चौपदे' और 'चुभते चौपदे' उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उन्होंने आलोचना और बाल साहित्य में भी उल्लेखनीय योगदान दिया था।

(दोहे)

जन्मभूमि

–अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

सुरसरि-सी सरि है कहाँ मेरू सुमेरू समान।
जन्मभूमि-सी भू नहीं, भूमंडल में आन।

प्रतिदिन पूजे भाव से चढ़ा भक्ति के फूल।
नहीं जन्म भर हम सके जन्मभूमि को भूल।

पग-सेवा है जननि की जनजीवन का सार।
मिले राजपद भी रहे, जन्मभूमि-रज-प्यार।

आजीवन उसको गिनें सकल अवनि सिंह मोर।
जन्मभूमि-जलजात के बने रहे जन भौंर।

कौन नहीं है पूजता कर गौरव-गुणगान।
जननी जननी जनक की जन्मभूमि को जान।

उपजाती है फूल-फल, जन्मभूमि की खेह।
सुख-संचन-रत छवि-सदन ये कंचन-सी देह।

उसके हित में ही लगे हैं जिससे यह जात।
जन्म सफल हो वारकर जन्मभूमि पर गात।

योगी बन उसके लिए हम साधें सब योग।
सब भोगों से हैं भले जन्मभूमि के भोग।

फलद कल्पतरु तुल्य हैं सारे विटप-बबूल।
हरि-पद-रज-सी पूत है जन्म-धरा की धूल

जन्मभूमि से हैं सकल सुख-सुषमा समवेत।
अनुपम रत्न समेत हैं मानव-रत्न-निकेत।

छायावादोत्तर काल के प्रमुख गीतकार **गोपाल सिंह 'नेपाली'** का जन्म बेतिया, ज़िला चंपारण (बिहार) में हुआ था। उनके 'उमंग', 'कल्पना', 'रिमझिम' जैसे 11 कविता-संग्रह प्रकाशित हैं। तीन समाचार पत्रों का संपादन करने वाले नेपालीजी ने फिल्मों में भी लोकप्रिय गीत लिखे। सन् 1963 में उनका निधन हो गया।

यह दिया बुझे नहीं

–गोपालसिंह 'नेपाली'

घोर अंधकार हो
चल रही बहार हो
आज द्वार-द्वार पर यह दिया बुझे नहीं
यह निशीथ का दिया ला रहा विहान है।

शक्ति का दिया हुआ
भक्ति से दिया हुआ
यह स्वतंत्रता-दिवस
रुक रही न नाव हो
ज़ोर का बहाव हो
आज गंग-धार पर यह दिया बुझे नहीं
यह स्वदेश का दिया प्राण के समान है।

यह अतीत कल्पना
यह विनीत प्रार्थना
यह पुनीत भावना
यह अनंत साधना
शांति हो, अशांति हो।
युद्ध, संधि, क्रांति हो
तीर पर, कछार पर, यह दिया बुझे नहीं
देश पर, समाज पर, ज्योति का वितान है।

कालजयी

तीन-चार फूल हैं
आस-पास धूल है
बाँस हैं, बबूल हैं
घास के दुकूल हैं
वायु भी हिलोर दे
फूँक दे, चकोर दे
क़ब्र पर, मज़ार पर यह दिया बुझे नहीं
यह किसी शहीद का पुण्य-प्राण-दान है।

झूम-झूम बदलियाँ
चूम-चूम बिजलियाँ
आँधियाँ उठा रहीं
हलचलें मचा रहीं
लड़ रहा स्वदेश हो
यातना विशेष हो
क्षुद्र जीत-हार पर यह दिया बुझे नहीं
यह स्वतंत्र भावना का स्वतंत्र गान है।

धर्मी बोले निगल कर, उसका हिन्दुस्तान।
हम तो कुछ करते नहीं, सब करता भगवान।।
–डॉ. सुरेश अवस्थी

1 अप्रैल, 1935 को फतेहपुर (हटा), ज़िला दमोह (म.प्र.) में जन्मे प्रसिद्ध नवगीतकार **नईम** हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्तकर्ता हैं। वे मध्यप्रदेश के विभिन्न शासकीय महाविद्यालयों में अध्यापन करके सेवानिवृत हुए। उनके दो संकलन प्रकाशित हैं–'पथराई आँखें' और 'बातों ही बातों में'। उन्हें म.प्र. साहित्य परिषद का 'दुष्यंत पुरस्कार' और 'भवभूति सम्मान' प्राप्त हो चुके हैं। 9 अप्रैल, 2009 को उनका निधन हो गया। श्रद्धांजलिस्वरूप हम उनके दो गीत प्रस्तुत कर रहे हैं।

दो नवगीत :

1. खून के आँसू

–नईम

खून के आँसू–
हमारी आँख में ठहरा हुआ है।
बाहरी हो तो करूँ तीमारदारी
रिस रहे नासूर से अक्ल हारी
मरहम पट्टी से सरासर
सच ये गहरा हुआ है।

हो गई भाषा पहेली, उलटबासी
आज खाँटे व्यंग्य की सूरत उदासी
पूछता है काल हमसे
शब्द का व्यक्तित्व क्यों दुहरा हुआ है?
अन्न का रिश्ता नहीं अब आचरण से
ज़िंदगी से कहीं ज़्यादा साबका पड़ता मरण से
विधाता, जनगणों का
अंधा हुआ, बहरा हुआ है।

2. प्रार्थना-गीत

प्यासे को पानी
भूखे को दो रोटी
मौला दे! दाता दे!!

आसमान की बात न जानूँ
जनगण भाग्य-विधाता दे!
धरती और आकाश न माँगूं
या ईश्वरीय प्रकाश न माँगूं
माँगे हूँ दो गज ज़मीन बस
मैं शाही आवास न माँगूं
पावों को पनहीं
परधनियाँ मोटी-सोंटी
सिर को साफा-छाता दे।

मज़हब नहीं भीख का कोई
भीख न होती ब्राह्मण, भोई
अमरीका, यूरोप भले दे
होती नहीं दूध की धोई
इनके हैं हम पाँसे
तो उनकी हम गोटी
हमें हमारा त्राता दे
जनगण मंगल गाथा दे।

नियम युद्ध के दफ्न हो गये
पुरखे जाने कहाँ सो गये?
कुरुक्षेत्रों में खड़े हुए दिन
कृष्ण न जाने कहाँ खो गये?
स्वजन पड़ोसों में बैठे
भर रहे चिकोटी
शबरी दे! सुजाता दे!!
मौला दे! दाता दे!!

जीभों पर काँटे उगे, मन में उगे बबूल।
रिश्ते कोई प्यार के, कैसे करे कबूल?
—डॉ. सुरेश अवस्थी

आनन्द शर्मा का जन्म 12 अगस्त, 1937 को उ.प्र. के बुलंदशहर कस्बे में हुआ था। प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। उनका देहावसान 9 मई, 2007 को हो गया।

गंगाजल वाले कलश

–आनन्द शर्मा

गंगाजल वाले कलश नहीं तुम,
हाँ महासिंधु होगे खारे जल के।

ये अधर हमारे रेगिस्तानी हैं
पर रामानुज जैसे अभिमानी हैं
ओ, क्रुद्ध परशुधर तुमसे ही हमको
सारी भूलें स्वीकार करानी हैं
गम्भीर नहीं तुम नीली झीलों-से
आधे जल वाली गागर-से छलके।

कंधों पर यात्रा हमें नहीं करनी
अपनी क्षमता से वैतरणी तरनी
वंचित रहना स्वीकार हमें लेकिन
भिक्षा के यश से गोद नहीं भरनी
तुम कल्पमेघ तो हमको नहीं लगे
गर्जन वाले बस बादल हो हलके।

तुम आयोजक आंधी-तूफानों के
हम सहज-सरल नाविक जलयानों के
हर भँवर फँसी पीढ़ी दोहरायेगी
आख्यान हमारे ही अभियानों के
जब-जब भी जलते अधरों पर साधे
मायावी ओस-कणों से तुम ढलके।

भारत के पूर्व राष्ट्रपति **डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम** का नाम विश्व के जाने-माने वैज्ञानिकों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उनकी अभूतपूर्व उपलब्धियों को देखते हुए 25 नवम्बर, 1997 को उन्हें भारत के सबसे बड़े नागरिक सम्मान 'भारत-रत्न' से अलंकृत किया गया। वे गीता-साधक और सहृदय कवि व वीणावादक हैं।

देश-वंदना

–डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

भव्य वह दृश्य था
स्वतंत्र भारत के जन्म का
मध्य रात्रि को
दो सदियों के शासक का, ध्वज उतरा था
राष्ट्रगान के मध्य
तिरंगा लालकिले पर फहराया
स्वतंत्र भारत के
प्रथम स्वप्न का उदय हुआ था।

चारों तरफ
फैला हुआ
जब हर्ष और आनन्द था
करुण पुकार थी एक
कहाँ हैं राष्ट्रपिता?
श्वेत वस्त्रधारी पुण्यात्मा!
दुःख-दर्द में डूबी हुई थी
जहाँ घृणा
और अहम से उपजा
जातिगत संघर्ष था
राष्ट्रपिता महात्मा
नंगे पाँव चले
शांति और सद्भाव के लिए
गलियों में बंगाल की

उस धन्य आत्मा की
शक्ति से प्रेरित हो
मैं करूँ प्रार्थना
कब होगी उत्पत्ति दूसरे स्वप्न की?

जन-जन का मन
चिंतनमय हो
उनके विचार फिर हो पाएँ साकार!
जन और उनके प्रतिनिधियों में बोध जगे
राष्ट्र व्यक्ति से ऊपर है हर बार।

देश के नेतृत्व को दो शक्ति
राष्ट्र को शांति
और शांति का वर दो!
कोटि-कोटि जन में 'मन की एकता' लाएँ
यह सामर्थ्य हमारे धर्म-गुरुओं को दो!
हे सर्वशक्तिमान!
हम करें परिश्रम, विकासशील से
विकसित हो जाएँ!
देशवासियों को यह वर दो
जन्म ले दूसरा स्वप्न हमारे पसीने में
हमारे नवयुवाओं को विकसित भारत दो!

जिसे पुस्तकें पढ़ने का शौक है, वह सब जगह
सुखी रह सकता है।

—महात्मा गांधी

8 फरवरी, 1926 को पुरावली, इटावा (उ.प्र.) में जन्मे पद्मश्री **गोपालदास 'नीरज'** हिंदी काव्य-जगत के 'गीत ऋषि' के अभिधान से सम्मानित हैं। वे एम.ए. तक शिक्षित हैं और अध्यापन क्षेत्र से भी जुड़े रहे हैं। फ़िल्मों में गीत-लेखन करने वाले नीरज जी के 'दो गीत', 'नीरज की पाती,' 'दर्द दिया' जैसे लगभग डेढ़ दर्जन कविता-संग्रह प्रकाशित हैं।

छिप-छिप अश्रु बहाने वालो!

–गोपालदास 'नीरज'

छिप-छिप अश्रु बहाने वालो!
मोती व्यर्थ लुटाने वालो!!
कुछ सपनों के मर जाने से जीवन नहीं मरा करता है।

सपना क्या है नयन सेज पर
सोया हुआ आँख का पानी
और टूटना है उसका ज्यों
जागे कच्ची नींद जवानी
गीली उमर बनाने वालो! डूबे बिना नहाने वालो!!
कुछ पानी के बह जाने से, सावन नहीं मरा करता है।

माला बिखर गई तो क्या है
खुद ही हल हो गई समस्या
आँसू गर नीलाम हुए तो
समझो पूरी हुई तपस्या
रूठे दिवस मनाने वालो! फटी कमीज़ सिलाने वालो!!
कुछ दीपों के बुझ जाने से आँगन नहीं मरा करता है।

खोता कुछ भी नहीं यहाँ पर
केवल जिल्द बदलती पोथी
जैसे रात उतार चाँदनी
पहने सुबह धूप की धोती
वस्त्र बदलकर आने वालो! चाल बदलकर जाने वालो!!
चंद खिलौनों के खोने से बचपन नहीं मरा करता है।

लाखों बार गगरियाँ फूटीं
शिकन नहीं आई पनघट पर
लाखों बार कश्तियाँ डूबीं
चहल-पहल वो ही है तट पर
तम की उमर बढ़ाने वालो! लौ की आयु घटाने वालो!!
लाख करे पतझर कोशिश पर उपवन नहीं मरा करता है।

लूट लिया माली ने उपवन
लुटे न केवल गंध फूल की
तूफ़ानों तक ने छेड़ा पर
खिड़की बंद न हुई धूल की
नफरत गले लगाने वालो! सब पर धूल उड़ाने वालो!!
कुछ मुखड़ों की नाराजी से दर्पन नहीं मरा करता है।

काबिज है गोदाम पर, मिस्टर सत्यानाश।
सवा सेर गेहूँ नहीं, प्रेमचंद के पास।।
–डॉ. सुरेश अवस्थी

सुप्रसिद्ध पत्रकार और कवि **कन्हैयालाल 'नंदन'** का जन्म 1 जुलाई, 1933 को गाँव परस्तेपुर, ज़िला फतेहपुर (उ.प्र.) में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए. करने के बाद उन्होंने भावनगर विश्वविद्यालय, गुजरात से पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। भारत के सर्वोच्च पत्रकारिता प्रतिष्ठानों में संपादक रहे नंदनजी की 'लु कुआ का शाहनामा', 'आग के रंग', 'गुजरा कहाँ-कहाँ से' जैसी आठ कृतियाँ प्रकाशित हैं। सम्प्रति सन् 1995 से *इंडिया मीडिया* में निदेशक हैं।

बालू बीच खड़े

–डॉ. कन्हैयालाल 'नंदन'

आँखों में
रंगीन नजारे
सपने बड़े-बड़े
भरी धार लगता है
जैसे
बालू बीच खड़े।

बहते हुए समंदर
मन के ज्वार
निकाल रहे
दरकी हुई शिलाओं में
खारापन डाल रहे
मूल्य पड़े हैं बिखरे
जैसे शीशे के टुकड़े।

नज़रों के ओछेपन
जब इतिहास रचाते हैं
पिटे हुए मोहरे
पन्ना-पन्ना भर जाते हैं

बैठाए जाते हैं
सच्चों पर
पहरे तगड़े।

अंधकार की पंचायत में
सूरज की पेशी
किरणें
ऐसे करें गवाही
जैसे परदेसी
सरेआम
नीलाम रोशनी
ऊँचे भाव चढ़े।

भरी धार लगता है
जैसे
बालू बीच खड़े।

विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं।
—जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

10 जुलाई, 1940 को पडरौना (उ.प्र.) में जन्मे **राधेश्याम बंधु** ने साहित्य की लगभग हर विधा में लेखन किया है। 'बरसो रे घन' और 'प्यास के हिरन' उनके कविता-संग्रह तथा 'एक और तथागत' खंडकाव्य है। अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित बंधु जी ने टेलीफिल्मों व धारावाहिकों की पटकथा भी लिखी है। सम्प्रति 'समग्र चेतना' नामक पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं।

क्यों नदियाँ चुप हैं?

–राधेश्याम बंधु

जब सारा जल
ज़हर हो रहा, क्यों नदियाँ चुप हैं?
जब यमुना का
अर्थ खो रहा, क्यों नदियाँ चुप हैं?
चट्टानों से लड़-लड़कर जो
चढ़ती रही नदी
हर बंजर की प्यास बुझाती
बहती रही नदी
जब प्यासा
हर घाट रो रहा, क्यों नदियाँ चुप हैं?

ज्यों-ज्यों शहर अमीर हो रहे
नदियाँ हुई ग़रीब
जाएँ कहाँ मछलियाँ प्यासी
फेंके जाल नसीब?
जब गंगाजल
गटर ढो रहा, क्यों नदियाँ चुप हैं?
कैसा जुल्म किया दादी-सी
नदियाँ सूख गईं?
बेटों की घातों से गंगामैया
रूठ गईं
जब मांझी ही
रेत बो रहा, क्यों नदियाँ चुप हैं?

सन् 1923 को मरुभूमि राजस्थान में जन्मे **नंद चतुर्वेदी** एम.ए. (हिंदी) तक शिक्षित हैं। उनका एक कविता-संग्रह 'यह समय मामूली नहीं' तथा निबंध-संग्रह 'शब्द-संसार की यायावरी' प्रकाशित है। उनको निबंध-संग्रह पर राजस्थान सरकार का सर्वोच्च पुरस्कार प्राप्त हुआ है। वर्तमान में उदयपुर में निवास कर रहे हैं।

दो नवगीत :

1. अभी कुछ बोल

–नंद चतुर्वेदी

बोलना हो तो
अभी कुछ बोल।

फिर नहीं आ पाए यह संजोग
या बचे बहरे-नपुंसक लोग
इस तरफ या
उस तरफ मत देख
खोल खिड़की-द्वार
कुछ तो बोल।

हर इबारत में लिखा है क्लेश
हर इबारत में छिपा विद्वेष
इन बाज़ारों में
लगा है देख
सिर्फ़ कुछ
रंगीनियों का मोल।

यह धुआँ निर्लिप्तता-पाखंड
जल रहे चारों तरफ भूखंड
भूख के मारे हुए हैं लोग
देख कुछ इतिहास
कुछ भूगोल।

2. झूठ अब इतिहास

एक टूटा दिन
हमारे पास
इस अटैची में भरा सामान
कुछ नहीं, कपड़े पुराने म्लान
चिट्ठियाँ जिनको पढ़ा सौ बार
है वही दुनिया
वही सब त्रास।

एक, दो, दस या पचासों साल
पेड़ पर लटकी पुरानी डाल
रोशनी वाले शहर के बीच
कौन गायब हो गया
रख लाश?

हैं यहाँ चारों तरफ दीवार
हैं अंधेरे अक्षरों के द्वार
इन मदरसों में पढ़ेगा कौन
बोलता हो
झूठ जब इतिहास?

मैं नरक में भी अच्छी पुस्तकों का स्वागत करूंगा; क्योंकि उनमें वह शक्ति है कि जहाँ वे होंगी, वहीं स्वर्ग बन जायगा।

—बाल गंगाधर तिलक

22 अप्रैल, 1959 को हरियाणा में जन्मे **अरुण जैमिनी** एम.ए. तक शिक्षित हैं। अपनी रचनाओं से उन्होंने हिंदी काव्य-मंच को नयी ऊँचाइयाँ दी हैं। विभिन्न चैनलों पर अनेक बार काव्य-पाठ कर चुके जैमिनी जी ने अनेक देशों की काव्य-यात्राएँ की हैं। उन्हें सन् 1999 में 'काका हाथरसी हास्यरत्न पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है। 'फिलहाल इतना ही' उनका प्रकाशित कविता-संग्रह है।

यहाँ हम उनकी प्रसिद्ध कविता 'ढूंढ़ते रह जाओगे' प्रस्तुत कर रहे हैं।

ढूंढ़ते रह जाओगे!

–अरुण जैमिनी

चीज़ों में कुछ चीज़ें
बातों में कुछ बातें वो होंगी
जिन्हें कभी देख नहीं पाओगे।
इक्कीसवीं सदी में
ढूंढ़ते रह जाओगे!

बच्चों में बचपन
जवानों में यौवन
शीशे में दरपन
जीवन में सावन
गाँव में अखाड़ा
शहर में सिंघाड़ा
टेबल की जगह पहाड़ा
और पाजामे में नाड़ा
ढूंढ़ते रह जाओगे!

आँखों में पानी
दादी की कहानी
प्यार के दो पल
नल-नल में जल
संतों की बानी
कर्ण जैसा दानी
घर में मेहमान
मनुष्यता का सम्मान
पड़ोस की पहचान
रसिकों के कान
ब्रज का फाग
आग में आग
तराजू में बट्टा
और लड़कियों का दुपट्टा
ढूंढ़ते रह जाओगे!

भरत-सा भाई
लक्ष्मण-सा अनुयाई
चूड़ी-भरी कलाई
शादी में शहनाई
बुराई-की-बुराई
सच में सच्चाई
मंच पर कविताई
गरीब की खोली
आँगन में रंगोली
परोपकारी बंदे
और अर्थी को कंधे
ढूंढ़ते रह जाओगे!

समय के सारथी

अध्यापक, जो सचमुच पढ़ाये
अफसर, जो रिश्वत न खाये
बुद्धिजीवी, जो राह दिखाये
क़ानून, जो न्याय दिखाये
ऐसा बाप, जो समझाये
और ऐसा बेटा, जो समझ जाये
ढूंढ़ते रह जाओगे!

गाता हुआ गाँव
बरगद की छाँव
किसानों का हल
मेहनत का फल
मेहमान की आस
छाछ का गिलास
चहकता हुआ पनघट
लम्बा-लम्बा घूंघट
लज्जा से थरथराते होंठ
और पहलवान का लंगोट
ढूंढ़ते रह जाओगे!

कट्टरता का उपाय
सबकी एक राय
डंकल के पंजे में देश आज़ाद
मरने का मज़ा, जीने का स्वाद
नेताजी को चुनाव जीतने के बाद
दुर्घटनाओं से रहित साल
गूदड़ी में होने वाले लाल
आँखों में काजल
प्रेम में पागल
साँस लेने को ताज़ा हवा
और सरकारी अस्पताल में दवा
ढूंढ़ते रह जाओगे!

आपस में प्यार
भरा-पूरा परिवार
नेता ईमानदार
दो रुपए उधार
कल में आज
संगीत में रियाज
बातचीत का रिवाज
दोस्ती में लिहाज
सड़क किनारे प्याऊ
सम्बोधन में चाचा-ताऊ
ढूंढ़ते रह जाओगे!

नेहरू जैसी इज़्ज़त
सुभाष जैसी हिम्मत
पटेल के इरादे
शास्त्री सीधे-सादे
पन्ना धाय का त्याग
राणाप्रताप की आग
अशोक का बैराग
तानसेन का राग
चाणक्य का नीति-ज्ञान
विवेकानंद का स्वाभिमान
इंदिरा गांधी जैसी बोल्ड
और महात्मा गांधी जैसा गोल्ड
ढूंढ़ते रह जाओगे!

चीरहरण करते रहे, अब चुनाव पर ध्यान।
धोती, कंबल, टोपियाँ, बाँट रहे श्रीमान।।

–डॉ. सुरेश अवस्थी

धनंजय कुमार का जन्म 10 अगस्त, 1949 को वाराणसी (उ.प्र.) में हुआ था। उनके दो कविता-संग्रह प्रकाशित हैं–'अंधेरी बात' और 'बर्फ की दीवार'। योग की सभी शाखाओं में प्रशिक्षित श्री कुमार इस प्राचीन विद्या का सर्वत्र प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

निगाहों में

–धनंजय कुमार

निगाहों में कोई इशारा नहीं है,
ये कैसा है दरिया, किनारा नहीं है।

हमारी निगाहों में चिनगारियाँ हैं,
कोई आसमाँ पर सितारा नहीं है।

मैं जाऊँ तो कैसे, बुलाने पे उसके,
बस आवाज़ दी है, पुकारा नहीं है।

वो पत्थर न पिघले, जो पाँव न फिसले
उन्हें वादियों का सहारा नहीं है।

ये सारा गुलिस्ताँ हमारा है, लेकिन
कोई फूल इसमें हमारा नहीं है।

ये दुनिया पुरानी-सी होने लगी है,
अभी चार दिन भी गुजारा नहीं है।

ज़मीं पर ठहरके ज़रा देर देखो,
फलक ज़िंदगी का सहारा नहीं है।

नेत्रों के सम्मुख जो वस्तु पड़ी हुई है, उसे जानने के लिए भी हमें पुस्तकों का मुँह ताकना पड़ता है।

–रवींद्रनाथ टैगोर

युवा कवि **अनुभव शर्मा** का जन्म 14 जनवरी, 1984 को मुजफ्फरनगर (उ.प्र.) में हुआ था। वे एम.बी.ए. तक शिक्षित हैं और उनका एक कविता-संग्रह 'श्रद्धांजलि' प्रकाशित है।

दुआ दे कोई

–अनुभव शर्मा

फूल सहरे में खिला दे कोई।
मैं अकेला हूँ, सदा दे कोई।

जिसने चाहा था मुझे पहले पल,
उस सितमगर का पता दे कोई।

रात सोती है, तो मैं जागता हूँ,
उसको जाकर ये बता दे कोई।

जो मेरे पास भी है, दूर भी है,
किस तरह उसको भुला दे कोई।

इश्क के रंग लिए फिरता हूँ,
उसकी तस्वीर बना दे कोई।

फूल फिर जख़्म बने हैं यारो,
फिर से पतझड़ को दुआ दे कोई।

विद्या, तप, दान, गुण, शील और धर्म से
विहीन मनुष्य इस पृथ्वी पर पशु के समान
जीवन व्यतीत करते हैं।

–चाणक्य

इलाहाबाद में जन्मीं **निवेदिता जोशी** प्रथम श्रेणी में एम.एससी. (माइक्रो बायोलॉजी) हैं। योग द्वारा शारीरिक व्याधियों के उपचार के सम्बन्ध में 'धरोहर' नामक सीरियल का निर्माण करने वाली निवेदिताजी का एक कविता-संग्रह प्रकाशित है। उनकी दो रचनाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं।

1. डूबता सूरज

–निवेदिता जोशी

उसी पहाड़ी के पीछे से चमकता सूरज रोज
लुका-छिपी खेलता है
सुबह नीले आकाश में चमकता हुआ
शाम तक घाटी की गोद में जा गिरता है
ज़िंदगी भी कुछ यों ही लुका-छिपी खेलती है
सुबह उम्मीद का नीला आसमाँ दिखाकर
शाम तक साए की गोद में जा गिरती है
जैसे फिर कभी सुबह होगी ही नहीं।

2. नंगे पाव

दर्द भरे रेगिस्तान में
नंगे पाँव के निशान दिखाई दिए
तो लगा कि जीवन यहीं है, यहीं कहीं है
सहसा जब उन निशानों पर अपने पाँव पड़े
तो पता चला कि वह मेरे ही पाँव के ठहराव थे
ज़िंदगी इस मरुभूमि से तो पहले भी गुजरी थी
तो क्या यह ठहराव था या फिर मेरा जीवन–
उन्हीं वीथियों में अभी भी भटक रहा है
जहाँ रेगिस्तान में सिर्फ़ तपते हुए
नंगे पाँव के निशान हैं।

ओम जय जगदीश हरे

–पं. श्रद्धाराम शर्मा

ओम जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट क्षण में दूर करे।।

जो ध्यावे फल पावे, दुख विनसे मन का।
सुख-सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का।।

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ मैं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ मैं जिसकी।।

तुम पूरण परमात्मा, तुम अंतर्यामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी।।

तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी, कृपा करो भर्ता।।

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय, मैं तुमको कुमति।।

दीनबंधु, दुखहर्ता, तुम रक्षक मेरे।
करुणाहस्त बढ़ाओ, द्वार पड़ा मैं तेरे।।

विषय-विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा।।

ओम जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट, क्षण में दूर करे।।

दीपिका जोशी 'संध्या' एक भावप्रवण कवयित्री हैं और पिछले कई वर्षों से कुवैत में बसी हुई अपने रचनाधर्म का पालन कर रही हैं। उनकी एक रचना हम यहाँ दे रहे हैं।

हो बहुत मुबारक

–दीपिका जोशी 'संध्या'

पहने सपनों की विजय माल
हो बहुत मुबारक नया साल!

नये साल की नयी किरन
सब गान मधुर पावन सुमिरन।

सब नृत्य सजे सुर और ताल
हो बहुत मुबारक नया साल!

फिर से उम्मीद के नये रंग
भर लाएँ मन में नित उमंग।

खुशियाँ ही खुशियाँ बेमिसाल
हो बहुत मुबारक नया साल!

उपहार पुष्प मादक गुलाब
मीठी सुगंध उत्सव शबाब।

शुभ गीत, नृत्य और मधुर ताल
हो बहुत मुबारक नया साल!

चांद हदियाबादी शुक्ल का जन्म पंजाब प्रांत के ज़िला कपूरथला (भारत) के ऐतिहासिक नगर हादियाबाद में हुआ था। सन् 1995 में डेनमार्क शांति संस्थान और 2000 में जर्मनी के रेडियो प्रसारक संस्थान के द्वारा सम्मानित किये गये हदियाबादीजी वर्तमान में डेनमार्क के 'रेडियो सबरंग' के मानक निदेशक हैं।

दरमियाँ यों न फासले होते

–चाँद हदियाबादी

दरमियाँ यों न फासले होते।
काश ऐसे भी सिलसिले होते!

हमने तो मुस्करा के देखा था,
काश वो भी ज़रा खिले होते।

ज़िंदगी तो फरेब देती है,
मौत से काश हम मिले होते!

हम जुबां पर न लाते बात उनकी
लव हमारे अगर सिले होते।

अपनी हम कहते, उनकी भी सुनते,
शिकवे रहते न फिर गिले होते।

काश अपने उदास आंगन में,
फूल उम्मीद के खिले होते!

रात का यह सफर हसीं होता,
'चाँद' तारों के काफिले होते।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली (भारत) में जन्मे **डॉ. अजय त्रिपाठी** ने एम.बी.बी.एस, एम.एस., एफ.आर.सी.एस. जैसी चिकित्सा क्षेत्र की उच्च उपाधियाँ प्राप्त की हैं। वर्तमान में वे बर्मिंघम (इंग्लैंड) में नेत्र-शल्यचिकित्सक हैं।

मैं आया हूँ

–डॉ. अजय त्रिपाठी

कुछ मायूसों की बस्ती में
मैं ख्वाब बेचने आया हूँ।
उन मुद्दों का, जो ज़िंदा हैं
मैं दिल बहलाने आया हूँ।।

बेनूर निगाहों की खातिर
लेकर प्रकाश मैं आया हूँ।
मैं वस्त्रहीन कंकालों की
खातिर कुछ कपड़े लाया हूँ।।

चेहरे की चंद लकीरें जो
जीवन-गाथा बतलाती हैं।
उस गाथा का हो अंत सुखद
उम्मीद जगाने आया हूँ।।

मैं नाकामी के मरुथल में
एक बूंद ओस की बनकर के।
खुद को मिटवाने की खातिर
ही अपने घर से आया हूँ।।

जहाँ धर्म ने बोयी है नफरत
और लहू बहा है नदियों में।
मैं घुसकर ऐसे दलदल में
एक पुष्प खिलाने आया हूँ।।

मैं गोवर्धन के पर्वत को
उंगली पर आज उठा लूंगा।
शोषण से मुक्ति का लेकर
इक मंत्र-बाण मैं आया हूँ।।

गुलशन सुखलाल का पूरा नाम 'गुलशन गंगाधर सिंह सुखलाल' है। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। हिंदी में उनका शोध कार्य जारी है। वर्तमान में वे महात्मा गाँधी संस्थान, मोका, मॉरिशस में हिंदी के वरिष्ठ व्याख्याता हैं।

पासवर्ड

–गुलशन सुखलाल

सुबह जब जागा
तो मोबाइल को चार्ज पर से निकाला और
ऑन करने के लिए कोड डाला
तैयार होकर ऑफिस पहुँचा
वहाँ दरवाज़े का कोड डालकर लाल बत्ती हरी की
फिर कम्प्यूटर ने माँगा अपना पासवर्ड
और जब पैसे निकालने ए.टी.एम. तक पहुँचा
तो एक और...
कोड...

दिन भर के कामों को अनलॉक करता हुआ
जब शाम को घर पहुँचा
तो सीधे बिस्तर पर क्रैश हो गया
पड़ोसी, दोस्त और रिश्तेदार तो एंटर कर नहीं पाए
बीवी, बच्चों, माता-पिता को भी मेरी दुनिया में
एक्सेस मिला नहीं।

ज़िंदगी में बेमानी हो चलीं
कुछ भावनाओं, नर्मियों को
दिल के फोल्डर में रखा था
उसका पासवर्ड...
मैं कहीं भूल गया।

डॉ. सुषम बेदी से *डॉ. सुधाओम ढींगरा* की बातचीत

बाहर का हिंदी साहित्य भी मुख्य शरीर का अंग है

हिंदी साहित्य के इतिहास में जब भी प्रवासी साहित्य के बारे में लिखा जायेगा तो अमरीकी हिंदी साहित्य को गौरव प्रदान करने वाली आठ उपन्यासों–*हवन, लौटना, नव भूम की रस कथा, गाथा अमरबेल की, कतरा-दर-कतरा, इतर, मोर्चे, मैंने नाता तोड़ा* की रचयिता, दो कहानी संग्रह–*चिड़िया और चील, सड़क की लय* की लेखिका, काव्य संग्रह–*शब्दों की खिड़कियों की* सृजनकार सुषम बेदी का नाम अग्रिम पंक्ति में आएगा। हिंदी कथा जगत में आप एक कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपकी कहानियाँ हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं हंस, धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कहानी इत्यादि में प्रकाशित होती रही हैं। आपने पंजाब यूनिवर्सिटी से पी-एच.डी. की उपाधि ली। कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली तथा पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ में अध्यापन किया। दिल्ली दूरदर्शन और रेडियो पर नाटकों तथा दूसरे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में बेतहाशा काम किया। लखनऊ रेडियो से बचपन में जुड़ी रहीं। अभिनय कार्य अमेरिका में भी जारी है। सन् 1982 से न्यूयार्क में बसी हैं। समसामयिक हिंदी रंगमंच और हिंदी भाषा की शिक्षा पर इनका शोध कार्य जारी है। अमेरिका में हिंदी भाषा के अध्यापन पर भी काम कर रही हैं, विशेष रूप से प्रामाणिक सामग्री के इस्तेमाल पर। 1985 से कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में हिंदी और साहित्य की प्रोफेसर हैं, आपकी अनेक रचनाओं का अंग्रेजी तथा उर्दू में अनुवाद हुआ है। भाषा शिक्षा के क्षेत्र में भी कई पुस्तकों की रचना की है। प्रस्तुत है उनसे विस्तृत बातचीत के चुनिंदे अंश–

कविता, कहानी, उपन्यास तीनों विधाओं में लिखती हैं आप, पर पहचान एक कथाकार की रही है, मूलतः आप क्या हैं और किस विधा में आपको संतोष मिलता है?

मूलतः मैं क्या हूँ? कवि या कहानीकार! लिखने की प्रक्रिया का मूल लेखन ही होता है, वह चाहे काव्य में बाहर आए या गद्य में। यह सच है कि मैं अधिकतर उपन्यास या कहानियों के माध्यम से ही पाठकों के सामने आती रही हूँ, पर मेरा पहला प्रस्फुटन कविता में ही हुआ है। उपन्यास भी उन्हीं दिनों लगभग साथ-साथ ही लिखा गया था। मुझे लगता है कि जब मैं देश से बाहर आई तो मेरे पास बहुत-सी कहानियाँ कहने की ललक मौजूद थी। कहानी या उपन्यास को माध्यम बनाना सहज लगा। देखा जाए तो जितने भी प्रमुख लेखक हैं उन्होंने किसी भी एक विधा में काम नहीं किया। प्रसाद या निराला ने कविता के साथ-साथ कहानी, उपन्यास, निबन्ध सभी कुछ लिखा; अज्ञेय ने तो कोई विधा छोड़ी ही नहीं।

उपन्यास से संतोष ज्यादा होता ही होगा जो मैं बार-बार इसकी तरफ मुड़ती हूँ। कहानी संग्रह दूसरा आ रहा है और उपन्यास आठवाँ, जो भी चीज़ मेरे दिमाग में आती है पूरे फार्म में आती है। उपन्यास ऐसी विधा है जिसका कैनवस इतना बड़ा होता है कि पूरी तरह खिलवाड़ कर पाती हूँ। जो भी चरित्र बनते हैं उनसे सम्बद्ध हर तरह की बात कह पाती हूँ। अंतर्मन ज्यादा सम्पूर्ण होकर पूर्णता में अभिव्यक्ति पाता है, कहानी जबरदस्ती लिख देती हूँ। उतनी फुर्सत नहीं होती, विषय के अंदर डूबने का समय नहीं होता। सोचती हूँ कि कहानी बन रही है उसे बांध दूँ। बाद में उस विषय को देखा जायेगा। मेरी कई कहानियाँ बीज रूप में आईं और बाद में उनका विस्तार उपन्यास के रूप में

हुआ। शायद पूरा स्वरूप आपको उनका मिले या ना मिले या कई बार कहानी स्वरूप छपवाया ना हो। कहानी लिखकर भी कई बार संतोष होता है। यह एक बारगी में लिखी जाती है। उपन्यास के साथ एक पूरी लंबी यात्रा होती है। उसका अपना मजा होता है। उपन्यास लिखते हुए मैं थक जाती हूँ, निचुड़ जाती हूँ और विधाएँ निचोड़ती नहीं। कहानी एक चिंगारी होती है और उपन्यास हवन। शायद इसीलिए संतोष मिलता है।

सुषमजी ने अपनी गम्भीर हँसी में कहा–शायद, बिल्कुल निचुड़ जाती हूँ।

आपके लेखन के मूल विषय क्या रहे हैं?

लिखने के मूल में एक बड़ी परिस्थिति मेरा भारत छोड़कर चले आना ही था। यहाँ के अलग तरह के अनुभव, नए तरह का रहन-सहन नए तरह के लोग, भाषा-संस्कृति, भारत की स्मृतियाँ और नॉस्टेल्जिया–सभी मेरे अंतर्मन को आंदोलित करते रहते थे। काफी अरसे तक भीतर जो कुछ जम रहा था, उसे फूटने के लिए सही माहौल और तात्कालिक वजह यहीं मिलीं। मुझे मानवीय रिश्तों, रिश्तों के बीच व्यक्ति की अपनी पहचान, मानव मन की गुत्थियाँ, उलझनों को समझने की, उनकी पड़ताल में गहरे उतरते चले जाने में हमेशा रूचि रही है। यही मेरे लेखन के मूल विषय बने। मैं जीवन की ओर इसलिए मुड़ पाई क्योंकि उन्हीं से घिरी होती थी। विदेश आने के बाद मन में उन्हीं के जगत को समझने और उसके भीतर उतरने की आकांक्षा थी। अब भी वह खत्म नहीं हुई है।

जीवन में कहानियाँ बिखरी हुई हैं, लेखक वहीं से कथानक चुनता है, किसी विचार या विषय को आप किस तरह से विस्तार देती हैं और उनको लेखनीबद्ध करने की प्रेरणा आप को कहाँ से मिली?

हवन उपन्यास फूटने का क्षण शायद नए साल पर होने वाले किसी हवन में भाग लेना ही था क्योंकि उसी क्षण में ध्यान करते-करते अचानक यहाँ की ज़िंदगी की विसंगतियाँ, संस्कृति टकराव, दो जिंदगियों को एक साथ जीते चलना और त्रिशंकु होने की मजबूरी एक कथा का आकार लेने लगी थी। पर उसके मूल में पिछले छह-सात बरसों से जिया हुआ अमरीका का जीवन था और उससे भी पहले चार साल यूरोप में बिताए थे। इस तरह से मन में तुलनात्मक उठापटक भी चलती रहती थी। हिन्दुस्तान में मैं 29 बरस रह चुकी थी। यहाँ के हिन्दुस्तानी कुछ और ही तरह के थे। यहाँ की भौतिक दौड़ में शामिल एक कृत्रिम हिन्दुस्तान रचते। एक झूठमूठ की भारतीय संस्कृति गढ़ते। ऐसी संस्कृति जिसका मूलवास और मूलाधार यहाँ के मंदिरों में है। ये अपने आपको पकड़ने के लिए दोनों ओर भागते। मुझे ये बातें बहुत तकलीफ देती थीं। मैं आर्थिक तौर पर सशक्त थी और आराम की ज़िंदगी बसर कर रही थी। लेकिन अपने आसपास के भारतीयों को जिस आर्थिक संघर्ष से गुजरते देखती थी या खुद भी 'परदेसी' होने के नाते जिस भाषागत और सांस्कृतिक विषमताओं को महसूस करती थी, ये बातें मुझे परेशान करती थीं।

लौटना मेरे अपने मन और अनुभव के बहुत करीब है। जो हवन में नहीं कह पाई थी वह *लौटना* का फोकस हो गया। *हवन* में सामाजिक और बाहरी संघर्ष ज़्यादा था। अंतर्मन के विस्तृत विश्लेषण का मौका नहीं था। इतनी ढेर सारी आहुतियाँ जो डालनी थीं। पर *लौटना* में औरत की उस अंदरूनी कसमसाहट और तकलीफ को व्यक्त करने की छटपटाहट थी, जो यहाँ के माहौल में अपने को पूरी तरह से खो रही थी। फिर भी अपने प्राकृतिक पर्यावरण में लौट नहीं सकती थी क्योंकि उसका जीवन अब एक निश्चित स्थान और दिशा में बंध गया था। इस तरह *लौटना* की मीरा का जन्म हुआ।

मेरे मेरे लिए उन सब आन्तरिक विषमताओं और अंतर्विरोधों का प्रतीक बन गई थी, जिसे यहाँ रहते हुए मैंने सभी भारतीयों में देखा। उसकी तकलीफ जैसे हर अप्रवासी की तकलीफ थी। हम लोग

जो ऊपर से इतने खुश, इतने सफल और एकदम मजबूत इंसान दिखते हैं, भीतर से कितने अकेले, कितने कमजोर और खोखले हैं।

एक दिन *इतर* की रचना शुरू हो गई। मैं जो कुछ भी लिखती हूँ, उसे जीती हूँ। सालों तक जीती रहती हूँ जब तक कि उपन्यास खत्म नहीं हो जाता। बहुत बार देर बाद तक भी जीती हूँ। खुद ही रस भी लेती हूँ। चाहे वो पीड़ा हो, बहुत बाद हैरान भी होती हूँ खुद पर कि क्या मैं पाठक जैसा सुख ले रही हूँ। या कि यह लेखन का सुख कुछ और है? पीड़ा को भी बार-बार भोगना, उसे सोचना शायद आत्मपीड़न का ही 'परवर्टेड' सुख हो सकता है।

मैंने जो कुछ लिखा है अपने आसपास से ही उठाया है। जीवन से प्रेरित हुई हूँ, जीवन की विडम्बनाओं से, विसंगतियों से, जीते जागते लोगों से। लोगों को उन विसंगतियों को जीते देखा है, उन विडम्बनाओं को देखा है, उन्हीं में से चरित्र उठाये हैं और पहचानी स्थितियों में उतरकर चरित्रों का विकास किया है। जीवन में ज्यादा से ज्यादा नजदीक जाने की कोशिश की है। जितना नजदीक जाती हूँ उतना ही उसकी विसंगतियाँ देखती हूँ और उन्हीं के जरिये मैं ज़िंदगी के यथार्थ को पकड़ने की कोशिश करती हूँ–जितनी गहरी विसंगतियाँ उतने ही चोखे यथार्थ के रंग।

इतर भी इन्हीं विसंगतियों की पहचान की उपज थी। जिन लोगों को हम अपने भीतर का श्रेष्ठतम अर्पित कर देते हैं क्योंकि हमने उन्हें श्रेष्ठ का प्रतीक मान लिया है, वही उस श्रेष्ठ की भूमिका अदा करते हुए हमें ठगते हैं। हम फिर भी उस ठगी को देख नहीं पाते क्योंकि हमें विश्वास अर्पित करने के लिए उस विश्वास की जरूरत है, कितना अंतर्विरोध है इस सारी स्थिति में, हमें मालूम है कि हमें ठगा जा रहा है फिर भी इसलिए नहीं देख पाते कि हम देखना नहीं चाहते। वरना क्यों हम शिकंजे से बाहर नहीं आते। धर्म ने आज तक इंसान को इसी तरह ठगा है और अब धर्म के दावेदार वही कर रहे हैं। एक गुरू को मुझे काफी नज़दीक से देखने और जानने का मौका मिला। तब लगा कि घोर स्वार्थी होते हैं ये लोग। दूसरों के भले के लिए नहीं, उन्हें चूसने के लिए होते हैं। पर मेरे तर्क से उनकें भक्त कभी प्रभावित नहीं होते हैं। इससे मेरी परेशानी और भी बढ़ जाती है। मैं अपने आपको बहुत लाचार पाती। इस तकलीफ ने *इतर* लिखवाया।

जब लिखती हूँ तो वह एक तरह का 'मेडीटेशन' होता है। समस्याओं पर गौर करना, परिस्थितियों और पात्रों के माध्यम से उसकी गहराई में जाना, उसकी एक-एक परत खोलना और फिर...और भीतर घुस कर जानने की कोशिश, कि आखिर सच्चाई क्या है? जो सच्चाई पाती हूँ, उसी को पाठक तक पहुँचाना मेरे लेखन कर्म का लक्ष्य होता है, मेरी बेचैनी ही मेरी रचनाओं का स्रोत बनती है।

जीवन में जो स्थाई और मूल्यवान माना जाता है, जैसे कि धर्म, संस्कृति और पारिवारिक सम्बन्ध, जब उन्हीं में तारतम्य नहीं रहता, उन्हीं में छेद दिखने लगते हैं, चाहे वे संस्कृतियों के टकराव की वजह से हो, औरत के प्रति अन्याय की वजह से या अप्रवासी जीवन की विषमताओं की वजह से–तो मेरा अपना केंद्र कहीं डगमगा जाता है। उसी धुरी और केंद्र या जीवन को स्थायित्व देने वाले सूत्रों की खोज–रचना की भी, तलाश बन जाती है। उसी तलाश की आंतरिक यात्रा पर ही पाठक को भी ले जाना होता है।

क्या कभी रचना के पूरा होकर प्रकाशित हो जाने के बाद महसूस हुआ है कि आप जो कहना चाहती थीं, कह नहीं पाईं या भिन्न तरीके से लिखतीं तो और भी निखार आता; चाहे आलोचक उस कृति की कितनी भी तारीफ क्यों ना कर चुके हों?

जी, जब बाद में अपना लिखा पढ़ा और पढ़ाने के लिए भी पढ़ना पड़ता है तो दिमाग में कई हिस्से

दोबारा लिखने लगती हूँ, पर कई हिस्से पढ़कर हैरान हो जाती हूँ कि ये कब लिखे, मुझे यकीन ही नहीं होता कि मैंने लिखे हैं, खुशी होती है, अब मैं लिखना चाहूँ भी तो वैसे नहीं लिख सकती और कई जगह ऐसी भी आती है, महसूस होता है कि अब मैं इसे भिन्न तरीके से लिखती। अपने आपका भी विकास होता है, सोच बदलती है। अनुभवों से विचारों में परिवर्तन आता है। विचार कोई ठहरे तो रहते नहीं। नारीवाद के लिए मैं जैसे पहले सोचती थी, अब नहीं सोचती। हाँ, यहाँ रहने के बाद मैं औरत को अलग तरह से समझने लगी हूँ, सोचने लगी हूँ।

जीवन में ऐसा क्या घटित हुआ कि आप लेखिका बनीं?

घटित कुछ नहीं हुआ, हाँ किशोरावस्था से ही हिंदी, उर्दू का शौक पड़ गया था और यह सब यू.पी. में रहने के दौरान हुआ। नवीं कक्षा से मैंने कविताएँ लिखनी शुरू कर दी थीं और तभी एक उपन्यास भी लिखा था जिसका आज कहीं पता नहीं, मैं जब कवियों को पढ़ती थी तो मैं भी वही बनना चाहती थी। दिल्ली विश्वविद्यालय में मैंने अंग्रेजी ऑनर्स छोड़ हिंदी ऑनर्स लिया और फिर मैं हिंदी साहित्य में घुसती चली गई। तब तक मेरी कविताएँ भी परिपक्व होने लगी थी। कहानियाँ भी लिखने लगी थी। शायद इन सबके बीज मेरे अंदर रहे होंगे।

बहुत-सी पत्रिकाएँ प्रवासी विशेषांक निकालती दिखाई देती हैं। प्रवासी दिवस, प्रवासी साहित्य सम्मेलन, प्रवासी सम्मान...आप प्रवासी साहित्य को किस तरह देखती है?

मेरे विचार से प्रवासी साहित्य 'विकासशील अस्तित्व' है। हिंदी साहित्य की शुरुआत, 19वीं सदी में आधुनिक काल, हिंदी साहित्य का वह बचपन था जिसमें भारतेंदु वगैरह आए और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा सुधार किया। मुझे ऐसा महसूस होता है कि प्रवासी साहित्य भी अपने बचपन के दौर से गुजर रहा है। यह एक शुरुआत का समय है। इसने अभी आमतौर पर वैसा साहित्य नहीं दिया जैसा और जहाँ हिंदी साहित्य खुद पहुँचा हुआ है। प्रवासी साहित्य में छुटपुट अच्छा लिखा देखने को मिल जाता है पर मुझे लगता है कि उसमें अपनी दिशा खोजी जा रही है। उस दिशा में अभी परिपक्वता नहीं आई है, यह उसका अभी शैशवकाल है, पत्रिकाएँ भी जो छपती हैं, अभी कुछ अच्छी निकलने लगी हैं, पहले तो कुछ भी पढ़ने लायक नहीं होता था।

हमारा साहित्य अमरीका का हिंदी साहित्य कहलाए या फिर प्रवासी हिंदी साहित्य?

यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा है, आसान नहीं है...जब मेरा *हवन* उपन्यास आया था, मुझे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा था, अब स्थिति बदल गई है। कई लोग लिखने वाले आ रहे हैं, यूके से लिख रहे हैं, बाकी देशों से एक दो लिख रहे हैं, मॉरीशस से तो पहले से ही लेखक हैं, अंततः क्या होने जा रहा है जो भविष्य में देखती हूँ कि भारत का हिंदी साहित्य भी मुख्य शरीर का अंग है। हिंदी साहित्य की रचना बाहर इतनी बड़ी तादाद में हो रही है कि वह मुख्यधारा का अंग अब नहीं बन पायेगी। उसकी पहचान इसी तरह होगी। यह अमरीका का साहित्य है, यह यू.के. का है, यह मॉरीशस का या यूरोप का। अलग-अलग तरह से पहचान बनेगी। हिंदी साहित्य का बहुत बड़ा दिल है। और उसमें सभी समा भी जायेगा, सहयोग भी बना रहेगा और पहचान तो बनेगी ही, साहित्य तो वर्गीकरण करता ही रहता है यह काम आलोचकों का है, वर्गीकरण में वर्गीकरण होता रहता है। प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, छायावाद... दुनिया इतनी भूमंडलीकृत, वैश्वीकृत हो गई है, दोहरी नागरिकता भी तो होती है और लेखक की पहचान एक देश से जोड़ी जाए, यह जरूरी नहीं...।

शायरों की महफिल

उतर भी आओ कभी आसमाँ के ज़ीने से
तुम्हें खुदा ने हमारे लिए बनाया है।
–डॉ. बशीर 'बद्र'

यहाँ पे बैठ के तूफान साँस लेते हैं
यहाँ पे पेड़ लगाने की ज़रूरत क्या है?
–शाकिर श्योपुरी

हँसते जो देखते हैं किसी को किसी से हम
मुँह देख-देख रोते हैं किस बेकसी से हम।
–मोमिन खाँ 'मोमिन'

इसी ख़्याल में हर शाम-ए-इन्तज़ार कटी
वो आ रहे हैं, वो आये, वो आये जाते हैं।
–नज़र हैदराबादी

हाय यह मज़बूरियाँ, नाकामियाँ, महरूमियाँ
इश्क़ आखिर इश्क़ है, तुम क्या करो, हम क्या करें।
–ज़िगर मुरादाबादी

जी रहे हैं जहाँ ज़िंदगी के बिना
खुदकुशी और किस चीज़ का नाम है।
–इंदिरा 'इंदु'

आतिश-ए-इश्क़ भड़कती है हवा से पहले
होंठ जलते हैं मुहब्बत में दुआ से पहले।
–फ़िराक़ गोरखपुरी

कल यही ख़्वाब हक़ीक़त में बदल जायेंगे
आज तो ख़्वाब फक़त ख़्वाब नज़र आते हैं।
–जाँनिसार 'अख़्तर'

बहारों पे रंगत जो छायी हुई है
बदन से तुम्हारी चुरायी हुई है।
–कलीम 'राही'

कहर है, मौत है, कज़ा है इश्क़
सच तो ये बुरी बला है इश्क़।
–मोमिन

बेबाक जैमिनी

–अमृतेश्वरचरण

अपने आप पर व्यंग्य कसना बहुत मुश्किल है। 'फिलहाल इतना ही' प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्य कवि अरुण जैमिनी का लोकप्रिय कविता-संग्रह है। संग्रह के रचनाकार '80 के दशक से ही अपनी चुटीली, मर्मभेदी और गुदगुदाने वाली रचनाओं से देश-विदेश के हिंदी काव्य-मंच से श्रोताओं को हँसाते रहे हैं और उनकी रचनाधर्मिता का सफर निरंतर जारी है।

कृति : फिलहाल इतना ही
कवि : अरुण जैमिनी (कविता संग्रह)
प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
मूल्य : 75, **पृष्ठ** : 160

संग्रह में कुल 69 कविताएँ हैं। रचनाएँ इन्द्रधनुषी हैं और इनका फलक अत्यंत विस्तृत है। ये रचनाएँ हँसने-हँसाने के साथ पाठक को कुछ सोचने पर विवश करती हैं। संग्रह के अंत में उनकी प्रसिद्ध और बहुचर्चित मंचीय रचना 'ढूंढ़ते रह जाओगे' भी शामिल की गई है। कविताओं के वर्ण्य-विषय रोज़मर्रा की ज़िंदगी से उठाए गए हैं व सामाजिक-राजनैतिक नेताओं को चिकोटी काटी गई है और अपनी कवि-बिरादरी पर भी व्यंग्य कसा गया है। वास्तव में अपने आप पर व्यंग्य करना बहुत मुश्किल है, लेकिन अरुण ने बड़ी बेबाकी से यह हिम्मत दिखाई है। जुमलों पर आधारित 'वाह! क्या सीन है', 'प्यार एक अंगीठी है', 'चुप्प...ये अंदर की बात है', 'मज़ा आ गया यार', 'तुले सो बिकाऊ', 'कौन बनेगा करोड़पति', 'ढूंढ़ते रह जाओगे' जैसे शीर्षक मीठी चुटकी लेते हैं। चूंकि वे मूल रूप से हरियाणा के रहने वाले हैं, इसलिए उनकी कुछ कविताओं में हरियाणवी अंदाज भी देखने को मिलता है। लम्बी कविताओं के अतिरिक्त 'संपादक के नाम' शीर्षक से कुछ क्षणिकाएं भी प्रस्तुत की गई हैं। पृष्ठ 70 पर प्रकाशित 'चापलूस', 'महंगाई' व 'गलतफ़हमी' नामक कविताएं छंदबद्ध हैं।

'क्रिकेटरिया' नामक कविता में कवि ने क्रिकेट के ब्याज से आज़ादी के बाद के भ्रष्टाचारी नेताओं की पोल खोलते हुए उनके कारनामों का कच्चा चिट्ठा दिखाया है–

आज़ादी के बाद
खूब चौके-छक्के उड़ाते रहे भ्रष्टाचारी
मैदान की हरियाली चरते रहे अत्याचारी
देश ने तो बस
आँसू पिये और जख़्म खाये
पचास साल बीत गये
पर अभी तक हम
अच्छाइयों के
अर्धशतक तक भी नहीं पहुँच पाये।

भारत में न्याय-व्यवस्था की साख कवि को उद्वेलित करती है और वह बेलौस हो कर 'वाह! क्या सीन है' में उस पर टिप्पणी करता है–

न्याय की आँखों पे बंधी हुई पट्टी है
शरीफों की खातिर तो न्यायालय भट्ठी है।

महंगा है न्याय बहुत सस्ते ईमान हैं
इंतज़ार में जाने कितने इंसान हैं।
बेकसूर जो भी हैं, वो ही ग़मगीन हैं
मूंछों को ऐंठ-ऐंठ अपराधी कहते हैं
वाह! क्या सीन है, वाह! क्या सीन है।

राष्ट्रभाषा हिंदी की दुर्दशा को देखकर कवि बहुत व्यथित है। अंग्रेज़ों के मानस-पुत्र हिंदी की हत्या करने पर आमादा हैं। यह वास्तविकता जानकर वह आक्रोश से भर जाता है और अपने उद्‌गार इन शब्दों में व्यक्त करता है–

यह 'हिन्दुस्तान' नहीं
यह 'इंडिया' है
और हिंदी
सुहागिन भारत के माथे की उजड़ी हुई बिन्दिया है
तुम्हारे ये हिंदी के ठेकेदार
हर वर्ष
हिंदी-दिवस तो मनाते हैं
पर रोज़ होती हिंदी-हत्या को
जल्दी ही भूल जाते हैं।

और अंत में उनकी बहुप्रशंसित कविता 'ढूंढ़ते रह जाओगे' का एक अंश–

आपस में प्यार
भरा-पूरा परिवार
नेता ईमानदार
दो रुपये उधार
कल में आज
संगीत में रियाज़
बातचीत का रिवाज
दोस्ती में लिहाज
सड़क किनारे प्याऊ
सम्बोधन में चाचा-ताऊ
ढूंढ़ते रह जाओगे।

संग्रह की भाषा-शैली मंचीय है और आम पाठक को आसानी से समझ में आ जाती है। 'एक प्रेम कविता' नामक शीर्षक में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग हुआ है। संग्रह की समस्त कविताएँ पठनीय हैं और यह संग्रहणीय भी है।

यदि 'पारस-पखान' आपको पसंद है, तो उसके नियमित सदस्य बनिए। स्वयं पढ़कर और दूसरों को भी इसका सदस्य बनाकर आप हमारे अभियान में सहभागी बन सकते हैं। कम-से-कम तीन से पांच वर्ष हेतु सदस्य बनने के लिए संपादकीय कार्यालय में अपनी धनराशि प्रेषित करें।

पत्रिका का अवलोकन करते हुए प्रमुख हस्तियाँ

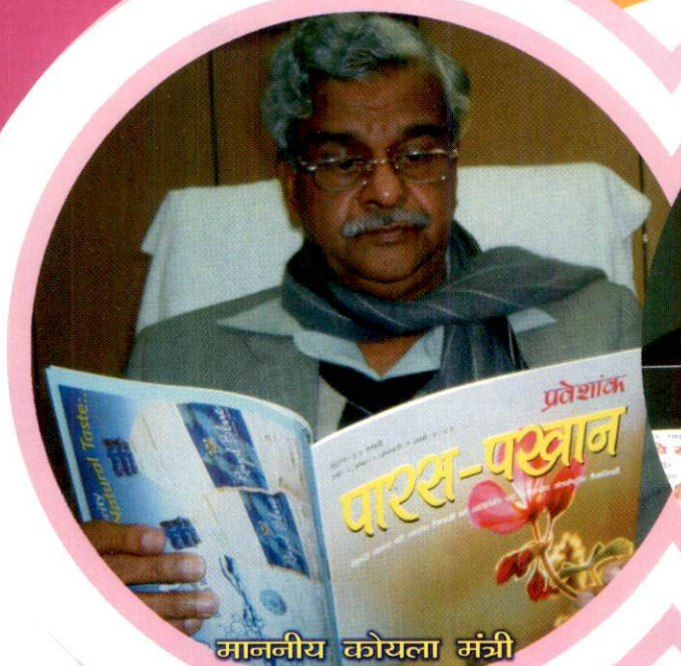

माननीय कोयला मंत्री
श्रीप्रकाश जायसवाल

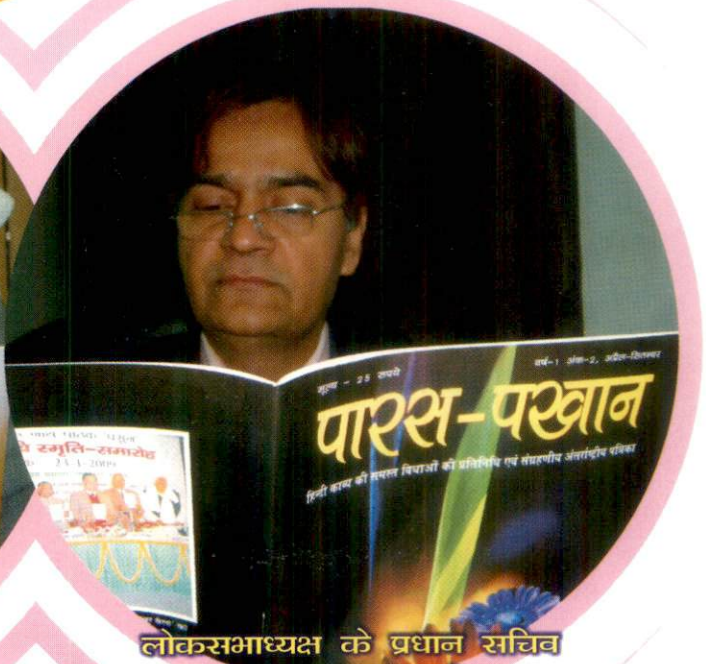

लोकसभाध्यक्ष के प्रधान सचिव
श्री दीनानाथ पाण्डेय

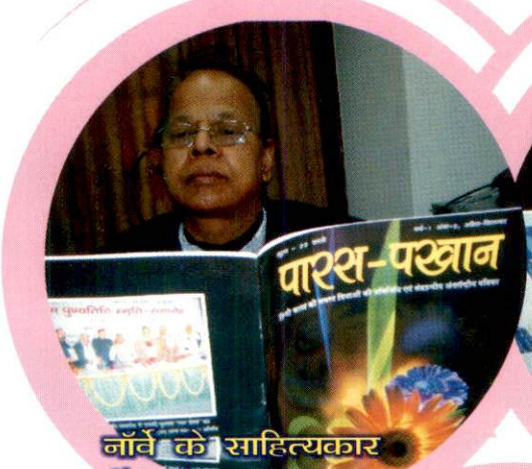

नॉर्वे के साहित्यकार
डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ला

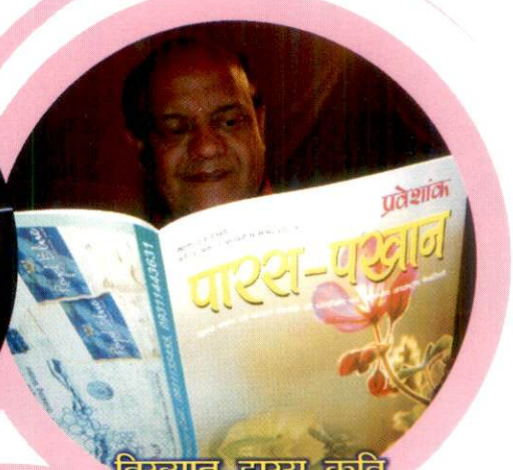

विख्यात हास्य कवि
श्री सुरेन्द्र शर्मा

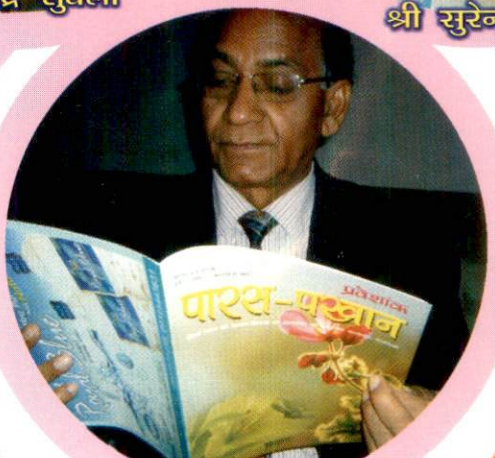

वरिष्ठ गीतकार
डॉ. कुँअर बेचैन

पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

(११/०७/१९३२ से २३/०१/२००८)

विनम्र श्रद्धांजलि

बाबू जी की स्मृतियों को, मेरा शत्-शत् वन्दन है
इस 'पारस-पखान' का अर्पित, शब्द-शब्द का चन्दन है।